विषय-सूची

—:—

स्व० महादेव देसाई (श्रद्धाजलिया)
श्री किशोरलाल मश्रुवाला, काका कालेलकर,
श्री घनश्यामदास बिडला — प्रारभ में

१	जिन्दगी या मौत ?	३
२	निर्णायक कसौटी	११
३	लाश को उतार फेंको	२४
४	साम्प्रदायिक त्रिकोण	३६
५.	आज ही शुभ मुहूर्त है	४४
६	'मित्रपथी' शुश्रूपादल	५१
७	चक्की का पाट	५७
८	स्वतत्र हिंदुस्तान—एक फौजी जरूरत	६५
९	'अदर आग धधक रही है'	७२
१०.	आयर्लैंड से तुलना और अतर	७८
११	अहिंसक असहयोग के तरीके	८६

स्वर्गीय महादेव देसाई

श्रद्धाञ्जलियां

१

गांधीजी और महादेवभाई के संबंध की तुलना किससे की जाय ? बहुत साल पहले मैंने इसे कृष्ण-उद्धव-सा बताया था। लेकिन उनमें तो मन्त्रित्व, मित्रता और भक्ति तीनों बातें थीं। उनकी तुलना तो राम के हनुमान और लक्ष्मण तथा तुलसीदासजी द्वारा वर्णित शिव से की जा-सकती है। फिर भी उनमेंसे किसी एक में भी महादेवभाई की-सी विशि-ष्टता नहीं पाई जाती। पुराने रिवाज के मुताबिक "सर्वे शुभोपमायोग्य" विशेषण महादेवभाई के साथ ठीक बैठता है।

प्राणों के लिए जैसे हवा है ठीक वैसे ही महादेवभाई के लिए गांधी-जी थे। उनका जीवन खतरे में आपड़े, इस बात की कल्पना तक उनको असह्य थी। उसकी तात्विक चर्चा करने को भी उनका मन तैयार न था। इसका अर्थ यह नहीं है कि अनशन की चर्चा करने को वह तैयार नहीं थे। लेकिन 'बापू' के अनशन का आभास तक उन्हें असह्य था। खुद अपने ही नाक-मुंह दबा देने की चर्चा करने को कौन तैयार है ? लेकिन बापू के विचार तो इस ओर जोरों से बहे जाते थे। वह अपने जैसे विचारवाले आदमियों तथा ईश्वरवादी, अईश्वरवादी, समाजवादी व दूसरे महासभावादी जो-जो इस बात की सूक्ष्म दृष्टि से चर्चा कर सकते थे उन सबसे इस बात को छेड़ते और यह चर्चा महादेवभाई को बेचैन कर देती थी। सेवाग्राम से बंबई गये, उसके पहले कुछ दिनों तक उन्हें नींद तक हराम होगई थी, और जबतक बापू ने इस बात का आश्वासन नहीं दिया कि अनिवार्य न होजाय तबतक वह अनशन न करेंगे, तबतक उनकी बेचैनी बनी रही। मैंने सुना है कि बंबई जाकर भी बापू के इस विचार को शांत कराने के लिए उन्होंने नेताओं के जरिये भी

प्राण और चित्त का एक-दूसरे के साथ ऐसा सबध है कि एक के चलने और रुकने पर दूसरे का चलना और रुकना निर्भर है। यह बात अधिक व्यापक अर्थ में महादेवभाई के जीवन को लागू होती थी। जैसा कि ऊपर बताया जाचुका है, बापूजी महादेवभाई के प्राणवायु थे और इसी कारण महादेवभाई के हृदय के सचालक तथा रोकनेवाले भी थे। उनकी सारी शक्तिया, उनका सब कुछ बापू को अर्पित होचुका था।

'हरिजन' के पाठको को जो क्षति पहुची है उसका पूरा करना बिलकुल असम्भव है। उनसे ज्यादा अध्ययन करनेवाले कई विद्वान होगे, उनसे ज्यादा याददाश्तवाले होगे, उनकी शैली का मुकाबला करनेवाले भी होगे; लेकिन इन सब बातो का गाधीजी के हृदय के साथ सीधा सबध स्थापित करना तो नही होसकेगा।

महादेवभाई से हम सबकी व्यक्तिगत जो क्षति हुई उसका क्या कहना? नरहरि और महादेवभाई की पहले से ही जोडी थी, और महादेवभाई व दुर्गाबहन की जोडी तो शिव-पार्वती की-सी थी। ये जोडिया टूटी। लेकिन उनमे से तो हम सबका एक बडा जत्था बन गया था। उनमें से पडितजी चले गये, जमनालालजी चल बसे, और आज महादेवभाई भी। आगे क्या होना है, यह कौन जानता है?

बापू को जो क्षति हुई है उसको कैसे कहू? बापू महादेवभाई के प्राणवायु थे तो महादेवभाई बापूजी के फेफडे थे। उनके बिना बापूजी को रिहा होने के बाद 'हरिजन' चलाने में क्या दिलचस्पी रहेगी, यह कहना मुश्किल है। कर्तव्य-बुद्धि से सभी आपत्तियो के बीच भी धीर महात्मा अपना कर्तव्य पालन करता है, यह सच है, लेकिन अत मे इसकी भी एक मर्यादा है। आखिर साधनो के टूटने से होनेवाली क्षति तो जरूर ही मालूम होती है। उस नियम के अपवाद महात्मा गाधी कैसे होसकते है?

'हरिजन-सेवक' से] —किशोरलाल घ० मशरूवाला

मोतीलाल नेहरू, देशबधु चित्तरजन दास और सरदार वल्लभभाई जैसो ने महादेवभाई को कई तरह से अपनी ओर खीचने की कोशिश की; लेकिन वह तो अलिप्त-के-अलिप्त ही रहे। और यह कोई आसान काम न था, क्योकि महात्माजी दानवीर कर्ण की तरह देश के महानेताओ की भीर भाजने के विचार से महादेवभाई को सौंप देने के लिए तैयार होजाया करते थे।

महादेवभाई इन २५ वर्षो की गाधीजी की अद्भुत तपस्या के अनन्य साक्षी थे। लोग महादेवभाई को गाधीजी के पुरुषार्थ की जीवन-कथा ही समझते थे। बुखार की हरारत मे बोले हुए गाधीजी के बोल भी महादेवभाई की नोटबुक मे दर्ज मिलते थे।

महादेवभाई के त्याग की बात अनेक प्रकार से कही जासकती है। लेकिन प्रेमल पति और प्रेमल पिता के रूप मे आदर्श स्थिति का उपभोग करते हुए भी उन्होंने अपना पारिवारिक जीवन इस तरह बिताया कि गाधीजी की सेवा में तनिक भी त्रुटि न पडने दी। इसे मै उनकी निष्ठा की बड़ी-से-बडी कसौटी मानता हू।

जिस देश और जिस जमाने में महादेवभाई के समान नर-रत्न पैदा होते है, उस देश और उस जमाने का भविष्य उज्ज्वल ही है। हिंदुस्तान के और सारी दुनिया के असख्य लोगो ने महादेवभाई के जीवन की सुवास का सुख लूटा है। अगर वे महादेवभाई की पवित्र स्मृति को अपने-अपने हृदय में रोप लें, तो निश्चित रूप से यह कहा जासकता है कि अपनी नश्वर देह छोड देने पर भी महादेवभाई आज इस ससार में अमर रूप से विचर रहे है।

जब श्री मगनलालभाई गाधी गये, तो बापू ने कहा—'मै विधवा बन गया हू।' जब श्री जमनालालजी गये, तो गाधीजी ने कहा—'जिसे मैंने अपना पुत्र माना था, आज मै उसका वारिस बनकर बैठा हू।' और अब जमनालालजी को गये मुश्किल से छः महीने भी नही हुए कि उनके २५ वर्ष के साथी चल बसे हैं। इस क्षति को तो वह हिंदुस्तान की स्वतत्रता के संकल्प के बल पर ही सह सकते हे।

लिखा था—"मै वापू का मत्री, सेवक और पुत्र का एक सम्मिलित पुलिदा हू।" मैंने महादेवभाई को इन तीनो रूपो मे देखा है। मुझसे तो महादेवभाई का घनिष्ठ भाई-चारा था, इसलिए मेरे लिए उनका मत्रित्व कोई खास मानी नही रख सकता था। पर तो भी मेरे पास भी महादेवभाई वापू के मत्री बनकर आसकते हैं, इसका एक मर्तवा मुझे दिलचस्प अनुभव हुआ, और उसके कारण महादेवभाई की योग्यता का मै और भी कायल होगया।

बहुत वर्षों की बात है। गाधीजी दिल्ली आये हुए थे और हरिजन-निवास मे ठहरे थे। उन्ही दिनो कवि-सम्राट टैगोर भी 'विश्वभारती' के लिए धन सग्रह करने को दौरे पर निकले थे। वह भी दिल्ली आपहुचे। कवि-सम्राट का कार्यक्रम यह था कि जगह-जगह वह अपनी कला का प्रदर्शन करे और बाद मे लोगो से धन के लिए प्रार्थना करे। गाधीजी को यह चीज चुभ-सी गई। एक इतना वडा पुरुष 'गुरुदेव' इस बुढापे में जगह जगह धन एकत्र करने के लिए—और सो भी कुल साठ हजार रुपयो के लिए—अपने नाट्य और नृत्य का प्रदर्शन करे, यह गाधीजी को असह्य लगा। मै तो गाधीजी से रोज ही मिलता था, पर मुझसे उन्होने इसका कोई जिक्र नही किया। पर उनकी वेदना बढती जाती थी, और जब उसे वह बर्दाश्त न कर सके, तो महादेवभाई से उन्होने अपना सारा दर्द बयान किया।

पहर रात बीती थी। मै अभी सोया नही था। सोने की तैयारी म लेट गया था। वत्ती बुझा दी थी। अचानक किसीके पाव की आहट पाकर मै सचेत होगया। "कौन है ?" मैने पूछा, तो महादेवभाई ने कहा—"मै हू।" महादेवभाई चुपचाप मेरे कमरे मे आकर मेरी खटिया के पास बैठ गये। "महादेवभाई, तुम ? रात को कैसे ? सब मगल तो है न ?" "हा, सब मगल है। कुछ सलाह के लिए आया हू।" मै खटिया पर से उठने लगा। महादेवभाई ने कहा—"लेटे रहिए, लेटे-लेटे ही बातें कर लीजिए, उठने की कोई जरूरत नही।" मैने फिर उठना चाहा, पर अत मे महादेवभाई के आग्रह से लेटा ही रहा। "हा, तो क्या है, कहो ?"

ठक्कर बापा जब सत्तरवे वर्ष मे पहुचे तो उनके कुछ मित्रो ने उनकी 'मगल-सत्तरी' मनाने का निश्चय किया। और वह निश्चय भी नितात निर्जीव था। सत्तरी के उपलक्ष्य मे सत्तर सौ—यानी सात हजार—रुपया इकट्ठा करना इतना ही निश्चय था। गाधीजी ने सुना, तो कहा—"ठक्कर बापा की सत्तरी मे केवल सत्तर सौ ? न तो सत्तर हजार, न सात लाख ! कम-से-कम सत्तर हजार तो इकट्ठा करना ही है।" पर सत्तर हजार भी प्रस्तावको को पहाड-सा लगा। सत्तरी के दिन नजदीक आने लगे, पर धन एकत्र न होसका। अत मे गाधीजी ने महादेवभाई को बवई भेजा। अब तो धन बरसने लगा, और दो दिन में एक लाख बीस हजार एकत्र होगया।

कुछ साल बीते, गुजरात में अकाल पडा। तब फिर गाधीजी ने महादेवभाई को बम्बई धन एकत्र करने के लिए भेजा। निश्चय किया था कोई तीन लाख इकट्ठा करना; पर इकट्ठा होगया कोई सात, आठ लाख। सबसे आश्चर्य तो यह था कि महादेवभाई को ऐसे लोगो से भी अच्छी रकम मिली, जो अपनी कजूसी के लिए बाजीमार समझे जाते थे।

सचमुच महादेवभाई गाधीजी के महज एक मत्री ही नही, बल्कि एक दूसरे शरीर बन गये थे। गाधीजी के विचारो को उन्होने इतना पी लिया था और उन्हे इतना हजम कर लिया था कि वह गाधीजी के मत्री ही नहीं, ऐन मौके पर गाधीजी के सलाहकार और सचालक तक बन बैठते थे।

कुछ ही दिनो पहले एक विलायती अखबार का प्रतिनिधि मौजूदा परिस्थिति पर गाधीजी का एक वक्तव्य लेने के लिए आया। गाधीजी ने खाते-खाते महादेवभाई को वक्तव्य लिखाना आरभ किया। मै देख रहा था कि महादेवभाई की कलम इस सिफत के साथ चलती थी कि गाधीजी की जबान से जो भाषा निकलती थी उससे दो-एक शब्द आगे उनकी कलम निकल जाती थी—अर्थात् गाधीजी अमुक शब्द के बाद किस शब्द का प्रयोग करेगे उसका महादेवभाई को एक अतर्ज्ञान था, जिसके कारण महादेवभाई की लेखनी अपना काम कर चुकती थी। पर जहां गाधीजी

जितना उन्हे पाश्चात्य दर्शन का ज्ञान था, उतना ही हमारे शास्त्रो का भी था। इसलिए गीता के अनुवाद के वह अवश्य ही शास्त्रीय अधिकारी थे। अपने किये हुए अनुवाद के कई अश उन्होने मुझे समय-समय पर सुनाये, जो मुझे अत्यत आकर्षक लगे। वह अनुवाद अबतक छपा ही नही। कई मर्तबा मैने उन्हे उसे छपाने का तकाजा किया, पर असल बात तो यह थी कि गाधीजी की टहल-चाकरी से उन्हे इस अनुवाद को छपाने की फुर्सत ही नही मिली। गाधीजी के सबध में समय-समय पर लिखी हुई इतनी टीपे (नोट्स) उनके पास थी, जो गाधीजी की बृहत जीवनी के लिए एक अत्यत उपयोगी मसाला है। मै कहा करता था कि 'महादेवभाई, बापू का बृहत जीवन-चरित कभी तुम्हे ही लिखना है', और महादेवभाई बडे उल्लास के साथ हामी भी भरते थे, पर वह दिन नही आया ! 'मन की मन ही माहि रही।'

पर महादेवभाई की मृत्यु अचानक हुई है, ऐसी बात नही है। काल भगवान का पहला न्योता तो उन्हे पाच साल पहले ही आगया था। गाधीजी के अत्यत आग्रह से उन्होने उस समय विश्राम लिया और मृत्यु की भेंट से बचे। राजकोट-प्रकरण के जमाने में फिर उन्हे दूसरा न्योता मिला। इस समय वह दिल्ली में आकर मेरे पास दो महीने रहे और फिर रोग-मुक्त हुए। इसके बाद तो गाधीजी के आग्रह करने पर भी उन्होने विश्राम लेने से इकार किया। आठेक महीने पहले फिर अचानक रोग ने उनपर आक्रमण किया, पर लाख कहने पर भी दो सप्ताह से ज्यादा उन्होने विश्राम नही लिया।

कुछ महीने पहले की बात है। जेठ की दुपहरी थी। गाधीजी के साथ कडी धूप मे चलते-चलते उन्हे बेहोशी आगई थी। इसका विवरण सुनकर महादेवभाई से मैने कहा—"महादेवभाई, यह शर्म की बात है कि बूढे बापू तो धूप मे चल सके और तुम बेहोश हो जाओ। कुछ दिन मेरे साथ रहकर विश्राम करलो और सुदृढ बन जाओ।"

पर महादेवभाई की दीर्घदृष्टि के सामने काग्रेस का आदोलन था। गाधीजी के उपवास की आशका थी। इसलिए उनको न थी विश्राम मे

जिन्दगी या मौत

: १ :

ज़िन्दगी या मौत ?

"प्रायश्चित लड़ाई के बाद नहीं होसकता; वह तो आज ही होना चाहिए। साम्राज्य की राह मौत की राह है, स्वतंत्रता की राह जिन्दगी की राह है। ब्रिटेन अपने लिए कौनसी राह पसंद करेगा ?"

एक पत्र-प्रेषक लिखते है :—

"विदेशी सैनिको के संबंध में लिखे गये गांधीजी के लेख का अलग-अलग लोगो ने अलग-अलग अर्थ किया है। उदाहरण के लिए इस वाक्य को लीजिए . 'इस दुनिया में नाजी सत्ता का उदय ब्रिटेन से उस पाप का प्रायश्चित्त कराने के लिए हुआ है, जो एशिया और अफ्रीका की कौमो को गुलाम बनाने और उनका शोषण करने के रूप में उसने किया है।' यह वाक्य बिलकुल निर्दोष है। लेकिन मेरे कई मित्र कहते हैं कि 'महात्माजी ने तो यह शाप ही दिया है। वे मानते हैं कि इस समय जो कुछ होरहा है सो ब्रिटेन के पापो की वाजिब सजा है, और अगर युद्ध में उसकी हार हो तो वह उसके योग्य ही होगी।' दूसरे कुछ मित्र कहते हैं : 'महात्माजी ब्रिटेन को पराजित देखना चाहते है, और ब्रिटेन की हार में उन्हें हिंदुस्तान का लाभ-ही-लाभ नजर आता है। इससे ऐसा भास होता है कि वह जापानी आक्रमण के पक्ष में हैं।' इसके विपरीत, गांधीजी ने तो कई बार कहा है कि हम अंग्रेजो की हार कभी चाह नहीं सकते, और पंडित जवाहरलाल ने कहा है कि अगर नाजीवाद और फासिस्टवाद की जीत हुई तो दुनिया में घोर अंधेरा छाजायगा।

लोग थे कि आस्ट्रेलिया की काली जातियो अथवा उत्तरी अमेरिका के लाल चमडी वालो की तरह उन्होने अधीनता स्वीकार नही की।" आस्ट्रेलिया में काली जातियो को निर्मूल किया गया, लेकिन "अब वहां राजनीति का मुख्य प्रश्न यह है कि आस्ट्रेलिया के विशाल खुले मैदानों से पीले लोगो को किस प्रकार दूर रक्खा जाय ?" कई लड़ाइयो के बाद ही न्यूजीलैंड के मावरी लोग—"वे उद्दड लोग—ब्रिटिश योजना में अपने स्थान को समझ पाये। फिर प्रशात महासागर में सगठन करते-करते फीजी द्वीपो पर भी सहज ही अधिकार कर लिया गया और सन् १८८५ में दक्षिण अफ्रीका को हड़प करने की झपटाझपटी अपनी पराकाष्ठा को पहुच गई। उसी साल बर्लिन में एकत्र यूरोपीय राष्ट्रो की एक परिषद् ने इस भक्षण को कानूनी स्वीकृति दी, और देश के मूल-निवासियो के आर्थिक और नैतिक कल्याण की वृद्धि के लिए अफ्रीका का बटवारा करने की नीति में आगे बढने का सबने प्रण किया।" इसके बाद इन देशो के मूलनिवासियो के राजाओ और सरदारो के साथ 'सधियां' की गईं, और केनिया व रोडेशिया के इतिहास का निर्माण हुआ, "जहा देश के मूलनिवासियो को 'अलग बाडो' में पूर दिया गया और उपजाऊ जमीन गोरी चमडीवाले नये बाशिंदो को देदी गई।" चीन में चीनियों को अफीम खरीदने के लिए बाध्य किया गया व बाहरी दुनिया के साथ व्यापार करने के लिए चीन के दरवाजे खुलवाने के इरादे से अंग्रेजो ने शस्त्रबल का उपयोग किया, सो सब भी मानो चीनियो के नैतिक लाभ के लिए ही किया गया था। उन्नीसवी सदी में ब्रिटिश साम्राज्य के अदर तीन लाख वर्गमील का नया प्रदेश शामिल किया गया और "दुर्भाग्य से उसका बहुतेरा हिस्सा इन वर्गमीलो मे बसनेवाले मूल निवासियो—काले, गेहुए या पीले—के विरुद्ध शस्त्रास्त्रो का प्रयोग

अपने होश-हवास खोचुका था, तो यह बात युद्ध-विराम के तुरत बाद के ब्रिटेन के बारे में कही जासकती थी····भावना और व्यवहार की बुरी-से-बुरी अतिशयता का उन दिनो बोलबोला था। तोप के गोलो से इंसान की अक्ल गुम होगई थी; अत. उस वातावरण में ऐसी-ऐसी घटनाए घटीं, जिनसे करीब-करीब यह झलक उठा कि ब्रिटेन खुद ही प्रशियन बन गया है। हिंदुस्तान में आतंक, आयर्लैंड में आतक।"

यह लेखक साम्राज्य का शत्रु नही है, बल्कि उसने ब्रिटेन की परोपकारवृत्ति का बचाव भी किया है; लेकिन उसे भी लडाई के बाद के ब्रिटिश व्यवहार से घृणा होगई थी, और उसने अपनी बुरी-से-बुरी आशका इस एक वाक्य में व्यक्त करदी थी "जो बीज उस समय बोये गये, उन सबके अकुर तुरत ही तो न उगे।" उसने हररोज बदलनेवाली परिस्थिति की उलझनो और परस्पर टकराते हुए प्रवाहो की चर्चा तो नही की है, लेकिन एक परोपकारी ब्रिटिश साम्राज्यवादी की आत्मतुष्ट रीति से लच्छेदार शब्दो में उपसहार करते हुए उसने कहा है · "मनुष्य-जाति को दो में से कोई एक रास्ता चुन लेना है। एक रास्ता साम्राज्य का है, जो इस समय फासिस्ट राज्यो का है, और दूसरा स्वतत्रता का है, जो ब्रिटेन का है--तभीतक, जबतक वह अपनी सस्कृति के प्राण-रूप इस सत्य की रक्षा करता है। गहरे-से-गहरे अर्थ में हमें जो चुनाव करना है, सो जिन्दगी और मौत के बीच करना है।" इसपर टीका का एक शब्द कहे देता हू। यह सम्पूर्ण सत्य है कि साम्राज्य का रास्ता मौत का रास्ता है, और स्वतत्रता का रास्ता जिन्दगी का रास्ता है। लेकिन ब्रिटेन आज भी साम्राज्य के रास्ते ही आगे बढ रहा है। गाधीजी अगर आज, इतनी देर बाद भी, ब्रिटेन को हिंदुस्तान से जाने के लिए और उसने अन्यायपूर्वक जो लाभ उठाये हैं उन्हे छोड देने के

अपने होश-हवास खोचुका था, तो यह बात युद्ध-विराम के तुरत बाद के ब्रिटेन के बारे में कही जासकती थी····भावना और व्यवहार की बुरी-से-बुरी अतिशयता का उन दिनो बोलबोला था। तोप के गोलो से इंसान की अक्ल गुम होगई थी; अतः उस वातावरण में ऐसी-ऐसी घटनाए घटीं, जिनसे करीब-करीब यह झलक उठा कि ब्रिटेन खुद ही प्रशियन बन गया है। हिंदुस्तान में आतंक, आयर्लेंड में आतंक।"

यह लेखक साम्राज्य का शत्रु नही है, बल्कि उसने ब्रिटेन की परोपकारवृत्ति का बचाव भी किया है, लेकिन उसे भी लडाई के बाद के ब्रिटिश व्यवहार से घृणा होगई थी, और उसने अपनी बुरी-से-बुरी आशका इस एक वाक्य में व्यक्त करदी थी: "जो बीज उस समय बोये गये, उन सबके अकुर तुरत ही तो न उगे।" उसने हररोज बदलनेवाली परिस्थिति की उलझनो और परस्पर टकराते हुए प्रवाहो की चर्चा तो नही की है, लेकिन एक परोपकारी ब्रिटिश साम्राज्यवादी की आत्मतुष्ट रीति से लच्छेदार शब्दो में उपसहार करते हुए उसने कहा है "मनुष्य-जाति को दो मे से कोई एक रास्ता चुन लेना है। एक रास्ता साम्राज्य का है, जो इस समय फासिस्ट राज्यो का है, और दूसरा स्वतत्रता का है, जो ब्रिटेन का है—तभीतक, जबतक वह अपनी सस्कृति के प्राण-रूप इस सत्य की रक्षा करता है। गहरे-से-गहरे अर्थ मे हमें जो चुनाव करना है, सो जिन्दगी और मौत के बीच करना है।" इसपर टीका का एक शब्द कहे देता हूं। यह सम्पूर्ण सत्य है कि साम्राज्य का रास्ता मौत का रास्ता है, और स्वतत्रता का रास्ता जिन्दगी का रास्ता है। लेकिन ब्रिटेन आज भी साम्राज्य के रास्ते ही आगे बढ रहा है। गाधीजी अगर आज, इतनी देर बाद भी, ब्रिटेन को हिंदुस्तान से जाने के लिए और उसने अन्यायपूर्वक जो लाभ उठाये है उन्हे छोड देने के

मेरे विचार में इन वचनो से गाधीजी के कथन का अर्थ असदिग्ध रूप से स्पष्ट होजाता है। गाधीजी एस्मी विंगफील्ड स्ट्रैटफर्ड और मिडलटन से जरा भी ज्यादा नाजियो या जापानियो की विजय नहीं चाहते। लेकिन इन्हे जो सकारण भय है, वही गाधीजी को भी है, और उन्हें सहज भाव से यह प्रतीत होता है कि अगर ब्रिटेन उनके द्वारा सूचित रीति से पश्चात्ताप नही करेगा तो उसे अपमानित होना पड़ेगा, नीचा देखना पडेगा।

अब पत्र-प्रेपक का आखिरी प्रश्न रह जाता है क्या वाजिब सजा वाली वात सचमुच दुधारी है ? पत्र-प्रेपक की इस टीका में कोई सार है क्या, कि गाधीजी की वात भी अग्रेजो और सनातनी हिंदुओ की उस वात-सी मालूम पडती है जिसमें वे कहते है कि हिंदुस्तानी अपने पाप की और हरिजन अपने पाप की सजा भोग रहे है ? वाजिव सजा की वात उनके मुह में शोभा नही देती, जिन्हे ईश्वर सजा के साधन के रूप में वरतता है। अगर हिटलर यह कहे कि ईश्वर अन्यायी ब्रिटेन को दड देने के साधन के रूप में उसका उपयोग कर रहा है, तो ईश्वर खुद उसकी वात पर हसेगा। सभव है कि हरिजनो ने पाप किये हो, लेकिन हमारे पाप उनसे कही ज्यादा है, और अगर हमने अपने पाप का प्रायश्चित न किया, तो ईश्वर हिंदूधर्म का नाश करने के लिए डॉ० अम्वेडकर का उपयोग करेगा। जब गाधीजी ने यह कहा कि अगर अस्पृश्यता रही तो हिंदूधर्म न रहेगा, तब उन्होने हिंदूधर्म को कोई शाप नही दिया था। इसी तरह आज ब्रिटेन को भी उन्होने कोई शाप नहीं दिया है। अस्पृश्यता के पाप को धोकर हिंदूधर्म अब भी अपने विनाश से वच सकता है, और उसी तरह ब्रिटेन भी अपने साम्राज्य के पाप को धोकर और हिंदुस्तान से एव दूसरे प्रदेशो से सम्मानपूर्वक व

: २ :

निर्णायक कसौटी

"जबतक वे संसार के एक सुंदर-से-सुंदर और पुराने-से-पुराने राष्ट्र को गुलाम बनाये हुए हैं, तबतक मित्र-राज्यों को यह कहने का कोई हक नहीं है कि उनका पक्ष नाजियों की तुलना में अधिक न्यायपूर्ण है।"

इस साल यहां गर्मी इतनी सख्त पडी है कि जो इसके आदी माने जाते है वे भी परेशान होगये है। लेकिन गाधीजी को तो अपने नये विचार की ऐसी लगन लगी है कि थोडे समय के लिए भी किसी ठंडे स्थान में जाने की बात ही नही सुनते। जबसे उन्होंने सेवाग्राम को अपनाया है, वह उसके साथ इतने ओतप्रोत होगये हैं कि यहांसे जरा भी हिलना नही चाहते। जो गभीर प्रवृत्ति उन्होने आजकल उठाई है, उसीका चिंतन वह रात-दिन करते है, यहातक कि मामूली तौर पर किसीसे मिलने का समय ही उनके पास नही रहता। तो भी समाचार-पत्रो के सवाददाताओ को वह खुशी से आने देते है, ताकि ज्वाला की जो भट्टी उनके हृदय मे आजकल सुलग रही है उसकी झाकी जग को करा सकें। दो अमेरिकन पत्रकार,—एक 'इटरनैशनल न्यूज सर्विस ऑफ अमेरिका' के मि० चैप्लिन और दूसरे 'लाइफ' व 'टाइम' के प्रतिनिधि मि० वेल्डन, जो सीधे बर्मा और चीन से आरहे हैं—दो रोज हुए जलती धूप मे गाधीजी के पास यहां आये थे।

उन्होने गाधी जी की अतिम योजना के बारे मे तरह तरह की बातें सुनी थी। सदर्भ से तोड-मरोडकर निकाले हुए उनके अपने और उनके

पर हमारे पास न तो सैन्य है, और न ही युद्ध की सामग्री या युद्धशास्त्र का नाम लेने लायक थोडा भी अनुभव तथा ज्ञान है। केवल अहिंसा का ही शस्त्र हमारे पास है, जिसका अत में हम आश्रय लेसकते हैं। अब सिद्धात-रूप में मै आपके सामने यह सिद्ध कर सकता हू कि हमारा अहिंसक असहयोग पूरी तरह सफल होसकता है। एक भी जापानी को मारे बगैर, अगर हम उनको रत्तीभर भी सहयोग न देने के अपने निश्चय पर अडे रहें तो, उनपर विजय पाने के लिए यह काफी होगा।"

"परतु इस अहिंसा से हमला रुक तो नही जायगा ?"

"अहिंसक असहयोग से हम हमले को रोक तो नहीं सकते। वे यहा एक बार तो आजायेंगे, लेकिन यहा उनका ऐसा शुष्क स्वागत होगा कि कुछ ही अर्से में उनकी अक्ल ठिकाने आजायेगी। यह सभव है कि वे निष्ठुर बन जायें, और चालीस के चालीस करोडो को साफ कर डालें। तब वह हमारी सपूर्ण जीत होगी। मै जानता हू कि आप मुझपर हसेंगे और कहेंगे, 'ऐसी बात या तो कोई मूर्ख करेगा, या देवता। मामूली आदमी तो कभी नही।' मै जवाब दूगा कि "शायद आप जो कहते हैं वह ठीक होसकता है। संभव है कि हम उस भीषण सग्राम-नीति का सामना न कर सके और हमे आज से भी बदतर गुलामी में से गुजरना पडे। परतु यह तो एक सिद्धात की बात हुई।"

"लेकिन अगर अग्रेज यहासे न हटें तो ?"

"मै नही चाहता कि हिंदुस्तान के दबाव में आकर या परिस्थिति म मजबूर होकर वे यहांसे हटें। मैं तो चाहता हूं कि वे अपने हित के लिए और अपनी सुकीर्ति की खातिर यहासे हटें।"

"लेकिन अगर आप पकड़े गये, जैसा कि हमने सुना आपके आदोलन का क्या होगा ? या अगर नेहरूजी

सकी उतना, इन लोगो का दावा है, एक दिन मे वे इकट्ठा कर सके है, और वह भी उनकी भाषा मे 'स्वेच्छा से दिये चदे' के रूप मे। इसलिए काग्रेस तो अहिंसक सहायता ही दे सकती है। लेकिन अगर आपको पता न हो, तो मै बतलाता हू कि वैसी सहायता की उन्हे जरूरत नही है और न उनके नजदीक उसकी कोई कदर ही है। परतु वे उसकी कदर करें या न करें, अहिंसक और हिंसक दोनो मुकाबले साथ-साथ नहीं चल सकते। इसलिए हिंदुस्तान की अहिंसा ज्यादा-से-ज्यादा आज यही कर सकती है कि मौन धारण करे, न तो उनकी फौजी कार्रवाई में रुकावट डाले और न किसी भी शक्ल में जापानियो को मदद दे।"

"परतु अग्रेजो को आप मदद तो नही देंगे न ?"

"क्या आप देखते नही कि अहिंसा और कोई मदद दे ही नही सकती ?"

"लेकिन रेलवे के बारे मे क्या ? आप रेलवे की हडताल तो नही न करायेंगे ? इसी तरह शहरी जीवन के लिए आवश्यक प्रवृत्तियो को तो बद नही न करना चाहेगे ?"

"वे जैसी आज चल रही है वैसी ही चलती रहेगी।"

"तो क्या आप रेलवे को और दूसरी आवश्यक प्रवृत्तियो को न छेडकर अग्रेजो की मदद नही करते ?" मिस्टर वेल्डन ने सवाल किया।

"बेशक, हम करते है। यह भी हमारी सकट पैदा न करने की नीति का सबूत है।"

यह बात छोड़नी होगी

"लेकिन हिंदुस्तान में अमेरिकन फौज की मौजूदगी के बारे में आप क्या कहते है ? हरेक अमेरिकन को यह लगता है कि हिंदुस्तान को स्वतत्रता प्राप्त करने में हमें मदद देनी चाहिए।"

उनके लिए सवारी की व्यवस्था भी की जाती है, और उन्हें अपनी जगह से हटाने से पहले कम-से-कम छ महीनो के लिए गुजारने का खर्च दिया जाता है। जापानी तो जब आवेंगे तब आवेंगे, लेकिन क्या इस घडी से ही हमें यह सब बरदाश्त करना पडेगा ? इसलिए मैंने अपने दिल में ठान लिया है कि हमारे पास सिर्फ एक ही रास्ता है और वह यह कि हम अंग्रेजो से कहे कि 'अब आप यहासे जाइए।' अगर अंग्रेज अपनी सत्ता हटालें, तो उनके इस नैतिक पराक्रम से अमेरिका और ब्रिटेन दोनो ही बच जायेंगे। अगर यहासे अपनी सत्ता हटा लेने के बाद वे यहा रहना चाहे, तो उन्हे हिंदुस्तान के मित्र के नाते रहना होगा, न कि हिंदुस्तान के मौरूसी मालिक की तरह। अगर अमेरिकन और अंग्रेज सिपाहियो को यहा रहना ही है, तो वे रहे। पर स्वतंत्र हिंदुस्तान के साथ संधि करके उसकी शर्तों के मुताबिक रहें।"

"लेकिन इसके लिए तो हिंदुस्तान के नेताओ को और यहाकी जनता को कुछ करके दिखाना चाहिए न ? तभी यह काम आगे बढ सकता है।"

"क्या आप चाहते है कि देश मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक सब जगह बलवे भडक उठे ? नही। मैंने अंग्रेजो को यहांसे चले जाने को जो कहा है वह बिना सोचे-विचारे नही कहा। मै जानता हू कि अपनी इस माग को पूरा कराने के लिए हमे बगावत नही, कुर्बानी करनी होगी। उसके लिए लोकमत जाग्रत करने की आवश्यकता है और वह अहिंसा द्वारा ही होसकता है।"

"तो क्या आपके अहिंसक असहयोग में मजदूरो की हडतालो को कोई स्थान नही ?" मिस्टर वेल्डन ने आश्चर्य के साथ पूछा।

गांधीजी ने उत्तर दिया : "नहीं, ऐसी तो कोई बात नही है।

देखने है उनके बारे मे आख मूदकर बैठ नही सकते। गाव-के-गाव खाली कराये जाते है, उनकी जगह फौजी छावनिया खडी की जाती है और गरीब रिआया से कहा जाता है कि वह अपना बदोबस्त खुद करले। बर्मा से लौटते समय अगर हजारो नही तो भी सैकडो हिंदुस्तानी भूखो और प्यासो मर गये और उस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति मे भी उन्हे असह्य भेदभाव का अनुभव करना पडा। गोरो का रास्ता जुदा, कालो का जुदा! गोरो के लिए रहने-खाने का पूरा बदोबस्त, कालो के लिए कुछ भी नही! और हिंदुस्तान आपहुचने पर भी वही भेदभाव! अभी जापानियो का तो कही पता भी नही है, तभी हिंदुस्तानियो को इस तरह सताया और अपमानित किया जारहा है। यह सब हिंदुस्तान की हिफाजत के लिए तो हर्गिज नही है—भगवान जाने किसकी हिफाजत के लिए यह है! इन्ही सब कारणो से एक सुहावने प्रभात म मेरा मन यह शुद्ध निश्चय कर उठा कि मै अग्रेजो से कहू, 'भगवान के लिए हिंदुस्तान को अब उसकी तकदीर पर छोड दो। हमे आजादी की सास लेने दो। परवा नही, अगर वह आजादी हमे अमेरिका के उन गुलामो की तरह, जिन्हे अचानक आजाद कर दिया गया था, परेशानी मे डाल दे या हमारा दम घोट दे। लेकिन आज का यह ढोग और पाखड तो खत्म होना ही चाहिए।"

'लेकिन ये तमाम बाते तो आप अग्रेजी फौज को ध्यान मे रखकर ही कह रहे है, अमेरिकनो को तो नही न ?"

"मै इन दोनो मे कोई फर्क नही पाता। नीति तो समूची वही है, उसमे कोई भेद नही किया जासकता।"

"क्या आपको उम्मीद है कि ब्रिटेन कुछ ध्यान देगा ?"

"मै तो इस उम्मीद को लेकर ही मरुगा और, अगर मै ज्यादा

के बारे में यह सवाल पूछा जाय कि 'आखिर इन्होने कर क्या दिखाया?' मैं कबूल करता हू कि करके तो कुछ भी नही दिखाया,लेकिन हो सकता है कि जब कडी कसौटी का समय आये तो ये कुछ कर दिखाये– या शायद न भी दिखा सके। इसलिए अंग्रेजो के सामने में करोडो की अहिंसक शक्ति को तो रख नही सकता, और जो कुछ कर दिखाया है उसे तो अंग्रेजो ने कमजोरो की अहिंसा कहकर टाल दिया है। अतएव मैंने तो केवल शुद्ध न्याय के लिए ही ब्रिटेन से यह माग की है, जिससे वह उसके गले उतर सके। यह केवल नीति की दृष्टि से ही विचारणीय है। भौतिक क्षेत्र मे तो ब्रिटेन ने न जाने कितनी बार साहस के काम किये हैं और बडे-बडे खतरे भी उठाये हैं। मैं कहता हूँ कि एक बार वह नैतिक क्षेत्र मे भी साहस से काम ले और हिंदुस्तान की माग है या नहीं यह विचार किये बिना आज ही उसे स्वतंत्र घोषित करदे।"

मुसलमानों का क्या ?

"लेकिन जैसा कि जिन्ना साहब कहते है, अगर मुसलमानो को हिंदुओ का राज्य मजूर न हो, तो स्वतंत्र हिंदुस्तान का क्या अर्थ रह जायगा ?"

"मैं अंग्रेजो से यह नही कहता कि वे हिंदुस्तान को कांग्रेस के या हिंदुओ के हाथो मे सौपकर जाये। वे उसे भगवान भरोसे छोड जायें, अथवा आजकल की भाषा मे कहू तो अराजकता के हाथो सौंप जायें। फिर या तो सभी दल आपस मे कुत्तो की तरह लड लेंगे, या जब देखेंगे कि जिम्मेदारी सचमुच ही उनके सिर आपडी है तो समझौते का कोई रास्ता अख्तियार करेंगे। मैं आशा रखता हू कि इस अराजकता

वह ब्रिटेन को धन की या अपनी अप्रतिम बुद्धि द्वारा तैयार किये गये तरह-तरह के शस्त्रास्त्रो की मदद पहुचाने से इकार करदे। जो धन देता है, वह काम करने की रीति भी ठहरा सकता है। चूकि अमेरिका मित्र-राज्यो के कार्य मे उनका एक बडा भागीदार बन गया है, इसलिए ब्रिटेन के पाप मे भी उसका हिस्सा होगया है। जबतक वे ससार के एक सुदर-से-सुदर और पुराने-से-पुराने राष्ट्र को गुलाम बनाये हुए है, तबतक मित्र-राज्यो को यह कहने का कोई हक नही है कि उनका पक्ष नाजियो की तुलना मे अधिक न्यायपूर्ण है।

"हिंदुस्तान को इस लडाई मे थोडी भी दिलचस्पी नही है। उलटे, उसका ध्यान तो जापान की तरफ ही लगा हुआ है। होसकता है कि आज आप उसकी साधन-सामग्री का मनमाना उपयोग कर सकें। लेकिन हिंदुस्तान अपनी राजी-खुशी से आपको वह सब दे नहीं रहा। यो हिंदुस्तान एक लाश की तरह है—आपकी जीत को असभव बना देनेवाली एक जबर्दस्त लाश। अगर किसी तरह इग्लैंड को होश आजाय और उसके मित्र भी बाहोश बनकर यह तय करे कि इस लाश को तो पहले उतार फेकना चाहिए, तो अपने इसी एक काम से उन्हे इतना बल मिलेगा जितना किसी भी प्रकार के युद्ध-कौशल से, युद्ध-सामग्री से अथवा अमेरिका की भरपूर मदद से भी नही मिलसकता।"

मि० ग्रोवर ने कहा . "इस लडाई के बाकी दिनो मे आपकी हलचल क्या और कैसी रहेगी, इसके बारे मे अमेरिका मे और हिंदुस्तान में कई सवाल पूछे जारहे है। मै आपसे यह जानना जाहता हू।"

गाधीजी ने हसते हुए एक सवाल अपनी ओर से पूछा "क्या आप मुझे बतायेंगे कि ये बाकी के दिन कितने है ?"

फिर मुद्दे की बात पर लौटते हुए मि० ग्रोवर ने कहा "चारो ओर यह अफवाह फैल चुकी है कि आप किसी नये आदोलन को शुरू करने की तजवीज में है। आपका यह आदोलन कैसा होगा ?"

"आदोलन का आधार तो इस बात पर है कि सरकार का और आम जनता का रुख कैसा क्या रहता है। अभी तो मै हिंदुस्तान के लोकमत का और बाहर की दुनिया पर पडनेवाले प्रभाव का अध्ययन कर रहा हू।"

"जो नया सुझाव आपने पेश किया है, उसीके असर की बात आप कर रहे है न ?"

उसके आपकी सारी मेहनत बेकार भी होसकती है। आज ब्रिटेन को हिंदुस्तान की मदद मिल रही है, सो तो सिर्फ एक गुलाम की बेगार है, पर कल जो मदद मिलेगी, वह स्वतंत्र भारत की मदद होगी।"

"क्या आप यह अनुभव करते हैं कि पराधीन भारत मित्रराष्ट्रों के लिए जापान का मुकाबला करने मे बाधक है ?"

"सो तो करता ही हूँ।"

"मैने जो यह पूछा था कि क्या मित्रराष्ट्रो की सेनाए हिंदुस्तान मे रहकर लड सकेंगी, सो यह जानने के खयाल से कि कही आप यह तो नही सोच रहे कि हिंदुस्तान से तमाम फौजें वापस बुलाली जाये ?"

गाधीजी ने कहा "यह लाजमी नही है।"

"बस, इस सवाल के बारे मे ही काफी गलतफहमी है।'

"इधर मैं जो कुछ लिख रहा हू, उस सबको आप ध्यान से पढिए। पिछले 'हरिजन' मे मैंने इस सवाल की पूरी चर्चा की है। अगर हिंदु-स्तान की मुकम्मल आजादी की शर्त उन्हे मजूर हो, तो फिर मेरी यह माग नही रहती कि उन्हे हिंदुस्तान छोडकर चले ही जाना चाहिए। उस हालत मे तो मैं इस तरह का कोई आग्रह कर ही नही सकता। क्योकि जापान को हिंदुस्तान मे बुलाने के आरोप का मैं अपनी सपूर्ण शक्ति से विरोध करता हू।"

"लेकिन मान लीजिए कि आपका प्रस्ताव ठुकरा दिया जाय, तो उस हालत मे आपका दूसरा कदम क्या होगा ?"

"वह एक ऐसा कदम होगा जिसे सारी दुनिया महसूस करेगी। मुमकिन है कि उससे अग्रेजी फौजो के काम मे कोई रुकावट न पडे, लेकिन अग्रेजो को उस ओर अपना ध्यान तो देना ही पडेगा। अगर मेरे प्रस्ताव को ठुकराकर ब्रिटेन यह कहे कि उसकी अपनी जीत के

विरोध करना होगा । मैं इतना उदार नही हू कि अपनी स्वतत्रता को खो-
कर भी मदद करता रहू । और आपको तो मैं यह समझाना चाहता हू
कि एक मुर्दा चीज किसी जिदा चीज की मदद नही करसकती । जबतक
मित्रराष्ट्र हिंदुस्तान की गुलामी के और हब्शियो व दूसरी अफ्रीकन
जातियो की दासता के दोहरे पाप की गठरी को अपने सिर पर लादे हुए
हैं, तबतक वे यह दावा नही करसकते कि वे न्याय के लिए लड रहे हैं ।"

इसपर मि० ग्रोवर ने मित्रराष्ट्रो की विजय के बाद हिंदुस्तान की
स्वतत्रता का चित्र खीचना शुरू किया और कहा कि "विजय के उन
लाभो को प्राप्त करने के लिए थोडी राह क्यो न देखी जाय ?" गाधी-
जी ने उन्हे याद दिलाया कि पिछली लडाई के बाद हिंदुस्तान को
रौलट एक्ट, पजाब का मार्शल लॉ और जलियावालाबाग के उपहार
मिले थे । मि० ग्रोवर ने कहा : "मैं तो आर्थिक और औद्योगिक लाभ
की बात कर रहा हू । इनके लिए सरकार की मेहरबानी की कोई
जरूरत नही रहती; परिस्थितिया खुद इन्हे प्रस्तुत कर देगी । और
आर्थिक समृद्धि देश को स्वराज्य की दिशा मे एक कदम आगे ले-
जायगी ।" गाधीजी ने कहा: "इस तरह जबरदस्ती कोई औद्योगिक
लाभ शायद ही प्राप्त होसके । मुझे उम्मीद नही कि लडाई के
बाद ऐसे बहुत-कुछ लाभ हो, और जो हो भी, मुमकिन है कि
वे जजीर को और भी जकडनेवाले साबित हो । फिर लडाई के दर-
म्यान सरकार जिस औद्योगिक नीति से काम लेरही है, उसे देखते
हुए तो किसी भी तरह के लाभ की बात ही शकास्पद मालूम होती है ।"
मि० ग्रोवर ने इस मुद्दे पर बहुत जोर न दिया ।

अमेरिका क्या कर सकता है ?

"आप अमेरिका से ऐसी तो कोई आशा नही न रखते कि वह

क्या देंगे ?

जब मि० ग्रोवर ने देखा कि अंग्रेजो के या उनकी फौजो के हिंदुस्तान छोड़कर चले जाने का शाब्दिक रूप मे जो अर्थ होता है उसपर गाधीजी का आग्रह नही है तो वह इस बात के गुताड़े मे लगे कि मित्रराष्ट्रो को इस सौदे से क्या फायदा होसकता है ? अलबत्ता, गाधीजी जो स्वतन्त्रता चाहते है वह किसी सेवा के बदले मे नही बल्कि अधिकार के रूप मे और पुराने कर्ज की अदाई के रूप मे ही चाहते है।

"यदि हिंदुस्तान को स्वतन्त्र घोषित कर दिया जाय, तो वह चीन की सहायता के लिए खासतौर पर क्या-क्या करेगा ?" मि० गोवर ने पूछा।

जवाब मे गाधीजी ने कहा "इतना तो मै फौरन कह सकता हू कि वह जो मदद कर सकेगा वह कीमती होगी। लेकिन आज मै उसकी तफसील नही देसकता। क्योकि मै नही जानता कि देश मे किस तरह की हुकूमत कायम होगी। आज हिंदुस्तान मे कई राजनैतिक सस्थाए है। मै आशा तो यह रखता हू कि वे राजतन्त्र की समस्या को भलीभाति हल कर लेगी। लेकिन आज वे अपनेआपमे मजबूत नही है। अक्सर अंग्रेज सरकार उनपर अपना असर डाल लिया करती है, और वे भी सरकार की तरफ आशाभरी निगाह से देखती है और उसकी राजी-नाराजी का उनपर असर भी होता है। इसके कारण आज सारा वातावरण रिश्वत से भरा और सडा हुआ है। किसी लाश के बारे में कोई यह कैसे सोच सकता है कि वह फिर जिंदा होउठेगी ? इस वक्त तो हिंदुस्तान मित्रराष्ट्रो पर एक जबर्दस्त बोझ ही बना हुआ है।"

"क्या 'जबर्दस्त बोझ' से आपका मतलब यह है कि वह ब्रिटेन और अमेरिका के हितो की दृष्टि से खतरनाक है ?"

लीजिए कि जापान मित्रराष्ट्रो को हिंदुस्तान के मुकावले ज्यादा सुरक्षित किसी दूसरे स्थान में हटने को मजबूर करे, तो आज मैं यह नही कह सकता कि उस हालत मे समूचा हिंदुस्तान जापान का मुकावला करने को खडा होजायगा। मुझे डर है कि यहा भी कुछ लोग वैसा ही करेंगे जैसा वर्मियो ने अपने देश में किया। मैं तो चाहता हू कि हिंदुस्तान तबतक जापान का विरोध करे जवतक कि एक भी हिंदुस्तानी जिंदा रहे। स्वतत्र होने पर वह ऐसा ही करेगा। उसके लिए वह एक नया ही अनुभव होगा, और चौबीस घटो के अदर-अदर उसका मानसिक कायापलट होरहेगा। उस दशा मे सभी दल एकमत होकर काम करना शुरू कर देगे। अगर आज इस जीवनदायिनी स्वतत्रता की घोपणा करदी जाय, तो मुझे इसमें कोई शक नही कि हिंदुस्तान एक वलवान मित्र वन जाय।

इसके वाद मि० ग्रोवर ने आजादी की एक रुकावट के रूप म कौमी दगो का जिक्र किया, लेकिन फिर खुद उन्होने यह भी कहा कि स्वतत्र होने से पहले अमेरिका के जुदा-जुदा राज्यो मे भी वहुत एकता नही थी। गाधीजी ने कहा—"इस सवध में मैं इतना ही कह सकता हू कि तीसरे दल के दुष्ट प्रभाव से मुक्त होते ही सव दलो के सामने वास्तविक परिस्थिति प्रत्यक्ष खडी नजर आयेगी और वे आपसी मेल वढाने की कोशिश मे लग जायेंगे। मैं स्वय तो यह विश्वासपूर्वक मानता हू कि हमें अलग रखनेवाली अग्रेजी हुकूमत के हमारे वीच से हटते ही ९० फीसदी सभावना यह है कि हमारे झगडे मिट जायेंगे।"

'डोमीनियन स्टेटस' क्यों नहीं ?

मि० ग्रोवर ने आखिरी सवाल पूछा—"अगर आज ही डोमीनियन

है। शायद आप यह कहेगे, कि 'आप इसी योग्य है।' अगर सचमुच आपका यही खयाल हो, तो मै कहूगा कि किसी भी राष्ट्र के लिए यह उचित नही है कि वह दूसरे किसी राष्ट्र को अपना गुलाम बनाकर रक्खे।"

मि० ग्रोवर ने धीमेसे कहा — "मै यह मजूर करता हू।"

"मै तो यह कहता हू कि अगर कोई राष्ट्र खुद गुलाम बनने को तैयार होजाय, तो भी उसे गुलाम बनाकर रखने में शासक-राष्ट्र को अपनी तौहीन मालूम होनी चाहिए। लेकिन आपकी भी अपनी कठिनाइया तो है ही। अभी आपको भी गुलामी का नाश करना है।"

"आप अमेरिका की बात करते है ?"

"जी हा, मै आपके वर्णद्वेष की और हब्शियो को सताने के लिए बनाये गये कानून वगैरा की बात कर रहा हू। लेकिन, मै समझता हूं, इन तमाम बातो को आपके सामने दोहराने की कोई जरूरत नही है।"

की तीन भुजाए होती है। नीचे की भुजा ज्यो-ज्यो छोटी होती जाती है, त्यो-त्यो आमने-सामने की भुजाए नजदीक आती जाती है। जब नीचे की भुजा बिलकुल मिट जाती है, तो ऊपर की दोनो भुजाए मिल जाती है। नीचे की भुजा जितनी बडी, दोनो के बीच का अतर उतना ही अधिक। इस प्रकार नीचेवाली भुजा बाजू की दो भुजाओ—पक्षो—के मिलने में बाधक बनती है। "साम्प्रदायिक त्रिकोण" मे लेखको ने यह सिद्ध किया है कि किस प्रकार हिंदू-मुसलमान-रूपी दो भुजाओ मे अंग्रेज-रूपी तीसरी भुजा फूट पैदा करती है। अगर यह तीसरी भुजा हट जाय, तो दोनो कौमो के बीच जो झगडे बराबर होते रहते है उनका आधार ही मिट जाय, और जो लोग, सौभाग्य से कहिए या दुर्भाग्य से, सदियो पहले परस्पर मिले थे उनमे सुदर एकता पैदा होजाय। अपने ही दोषो को देखने की वृत्तिवाले गाधीजी आज करीब २५ साल से अंग्रेजो की मौजूदगी को कोई महत्व न देकर एकता के लिए कोशिश करते रहे। लेकिन जब उनके अथक और प्रार्थनापूर्ण प्रयत्न भी सफल न हुए, तो दु खपूर्वक उन्हे यह स्वीकार करना पडा कि जबतक इस बुराई की जड नही मिटेगी तबतक यह रोग निर्मूल न होपायेगा। इस निर्णय पर पहुचने के लिए क्रिप्स-योजना ने आखिरी तिनके का काम किया, जिसमे भेदनीति की हद करदी गई थी। अत दिल्ली से ही गाधीजी अपने मन मे यह निश्चय करके लौटे, कि जबतक इस अभागे देश से इसके साम्राज्य-वादी शासक हट नही जाते तबतक हम उबर नही सकते। इस देश की भूमि पर पैर रखने के क्षण से ही अंग्रेजो ने यहा जिस भेदनीति से काम लिया है, लेखको ने इतनी कुशलता के साथ उसका विश्लेषण किया है कि कोई भी तटस्थ पाठक—फिर वह हिंदू हो या मुसलमान—उनके निर्णयो से सहमत हुए बिना रह नही सकता। विशेष उल्लेखनीय बात

और शिकार मानते है। इसका प्रायश्चित्त वे यहासे विदा होकर ही कर सकते है, दूसरे किसी तरीके से नही।

लेखको ने कई दृष्टियो से इस प्रश्न की छान-बीन की है, और सभी दृष्टियो से वे एक ही नतीजे पर पहुचे है। शुरू से आजतक हिंदुस्तान मे अग्रेजो की नीति बदर-बाट की नीति ही रही है। लेखको ने ठेठ उन्नीसवी सदी के आरभ से लेकर आजतक का इतिहास बडे दिलचस्प ढग से, लेकिन शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से, पेश किया है। जब मुसलमानो के हाथ से उनका राज्य निकल गया, तो पहले उनको बुरी तरह कुचला गया, और सो भी इस हदतक कि स्वय अग्रेज इतिहास-लेखको ने यह स्वीकार किया है कि अग्रेजो के आने के बाद मुसलमानो की जैसी दुर्दशा हुई वैसी उससे पहले कभी नही हुई थी। उन्हे फौज से हटाया गया, मुल्की जगहे भी उनके लिए गिनी-गिनाई रक्खी गई, और उनकी सस्कृति का विकास करने के बदले उसका अवरोध करने की हरेक कोशिश की गई। लेखक पूछते है : "काग्रेसी सरकार के माथे पाप की गठरी लादनेवाले और काग्रेस-सरकार से मुक्ति पाने पर मुक्ति-दिवस मनानेवाले मुसलमान भाई क्या यह जानते भी है, कि अग्रेजो ने उनके क्या हाल किये थे?"

त्रिकोण की सरकारी भुजा का वर्णन बिना किसी प्रकार की अतिशयोक्ति के, केवल हकीकत की बिना पर, निर्धारित प्रमाणो के सहारे किया गया है। सरकार के पास कोई ऐसी नीति नही जिसे सामने रखकर वह चली हो—हा, एक नीति जरूर रही है, और वह यह कि जिस तरीके से उसके राज्य की नीव मजबूत बने उसी तरीके से राज-काज चलाया जाय, जिस कौम या जाति को बढावा देने से राज्य की नीव मजबूत होती हो, उसे बढावा देना, और अगर ऐसा करते हुए अपनी

जाता है, उसमें अग्रेजो के हिंदुस्तान आने से लेकर कर्जन और हार्डिग तक की उनकी कारगुजारियो का रूखा-सूखा वर्णन तो दिया जाता है, लेकिन एल्फिस्टन और लारेंस से लेकर लेक, मिंटो, वर्कनहेड, होर, मैकडॉनल्ड और एमरी ने ब्रिटिश साम्राज्य को बनाये रखने के लिए कैसी-कैसी चालाकियो से काम लिया है इसका कोई इतिहास कही देखने में नही आता। इस इतिहास को समझने के लिए सबको यह पुस्तक जरूर पढनी चाहिए।

लेखको ने अग्रेजो की विविध क्षेत्रो मे की गई कारगुजारियो का कई तरीको से वयान किया है, मगर खास तौर पर उन्होने राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रो की कारगुजारियो पर प्रकाश डाला है। आर्थिक क्षेत्र की कारगुजारियो का भेद हमे रमेशचद्र दत्त और दादाभाई नौरोजी के ग्रथो से मिला था। मेजर वसु के ग्रथो से—'भारत में अग्रेजी राज' आदि से—भी वहुत कुछ मिलता है। लेकिन सामाजिक और राजनैतिक पड्-यत्रो का आधुनिक इतिहास इतने रोचक ढग से और कही नही मिल सकता। लेखको ने सिर्फ अग्रेजो को ही दोष नही दिया है, उन्होने हमारे अपने दोष भी दिखाये है। उनका कहना यह है कि हमने अग्रेजो की कूटनीति के लिए अपने यहा क्षेत्र तैयार रक्खा था, लेकिन साथ ही वे यह भी कहते है कि "हमारी सामाजिक जडता, आर्थिक दुर्वलता और सास्कृतिक उदासीनता जो हमारे जीवन मे ताने-बाने की तरह बुनी जा चुकी है, सो सब अधिकतर ब्रिटिश राज्य की ही देन है।"

इससे समझदारो ने तो यह समझा कि ब्रिटिश हुकूमत का विरोध करके आजादी हासिल करनी चाहिए, लेकिन जो स्वार्थी थे, उन्होने साम्प्रदायिकता को अपनाया। साम्प्रदायिक बनकर दोनो ने अपने-अपने विवेक को तिलाजलि देदी। एक जमाना था जब हिंदू महासभा और

गये परिशिष्ट आकडो और हकीकतो से लदे पडे हैं। एक भी कथन अप्रमाणित या अनधिकृत नही है। पुस्तक मे जगह-जगह कटु सत्य कहा गया है, फिर भी भाषा मे सयम और तटस्थता को खूब निबाहा गया है। आशा है, अपने देश के सच्चे इतिहास को जानने की इच्छा रखनेवाले ध्यानपूर्वक इस पुस्तक का अध्ययन करेगे।

और विलायत के मजदूरो के लिए अधिक आरामवाला जीवन। लेकिन यह साम्राज्य ही इस लडाई का कारण है और आज साम्राज्य शब्द मृत्यु का पर्याय बन गया है। मिसाल के तौर पर प्रो० लास्की साम्राज्य की एक उलझी हुई समस्या के रूप मे—सब समस्याओ के केंद्र-रूप—हिंदुस्तान का जिक्र करते हैं। वह कहते है . "हिंदुस्तान आज ब्रिटिश सत्ता से अपनी मुक्ति उतनी ही दृढता के साथ चाहता है, जितनी दृढता के साथ पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया जर्मनी से अपनी मुक्ति चाहते है।" इसके बाद उन्होंने हूबहू यह बताया है कि यह सत्ता किन-किन उपायों से टिकाई जाती है। वह कहते है .—

"इस सत्ता को निवाहने के लिए हमे हर साल—सन् १९३६ के बाद भी—अपने विशेषाधिकारो का, निरकुश शासन का, जेलखानो का और कोडो के विपुल उपयोग का सहारा लेना पडता है। अपने शासन की तारीफ करनेवाले जो मुट्ठीभर हिंदुस्तानी हम पैदा कर सके है, वे तो हमारे ही पिट्ठू है। अगर हमने उनको इस तरह आगे न बढाया होता, तो वे भी हमारे विरुद्ध ही रहे होते, पक्ष में नही। इस सचाई को हम भी जानते हैं और हिंदुस्तान भी जानता है। अपने निज के आर्थिक हितो के सिवा यदि हम हिंदुस्तान मे किसी दूसरे हितो की कोई रक्षा करते है, तो वह उन लोगो का हित है जो हिंदुस्तान के राजा-महाराजा कहलाते है। अगर पिछले ५० वर्षों का इतिहास ही देखा जाय, तो एकआध दर्जन अपवादो को छोड़कर उनमे से हरेक के विषय मे यह कहा जासकता है कि बर्बरता मे और दम्भ या पाखड मे उनका शासन यूरोप के पुराने बागियो से ही टक्कर ले सकता है।

"चूकि हिंदुस्तान मे हम अपनी हुकूमत हिंदुस्तानियो की मागो

तरह के निर्णय भी कर डालते है, और फिर बडे गर्व के साथ हिंदुस्तान को ब्रिटेन के प्रति उदारता दिखाने के लिए धन्यवाद देते है, उसका बहुत-बहुत आभार मानते है, अथवा भिन्न-भिन्न राजाओ से तरह-तरह के उपहार लेते है। हम जानते है कि हमे मिलनेवाले ये उपहार राजा लोग अधिकतर अपनी गरीब प्रजा को लूटकर ही हमे देते है, और इस गरज से देते है कि हम बराबर उनकी रक्षा करते रहे। उनसे इस तरह की भेंट लेकर हम दुनिया को यह दिखाना चाहते है कि हिंदुस्तान हमारे प्रति कितना 'वफादार' है। मै नहीं जानता कि यह सब करके हम अपनेआपको कितना धोखा देते है। साम्राज्यमात्र में आत्मवंचना की शक्ति रहती ही है। लेकिन इतना तो मै जानता हू कि साम्राज्य के बाहर कोई इस धोखे में नहीं आता, और हिंदुस्तान की जनता तो बहुत ही कम धोखा खाती है।"

इस कठोर सत्य को बताकर प्रो० लास्की इसका उपाय भी सुझाते है। इस उपाय को सुझाने मे उन्होने जिस न्याय-बुद्धि का परिचय दिया है, वह सचमुच प्रशसनीय है। लेकिन वस्तुस्थिति को देखते हुए उनका यह उपाय अब काम नही कर सकता। वह सुझाते है कि सरकार इस आशय की घोषणा करदे, कि "लडाई खत्म होने के बाद एक साल के अदर हिंदुस्तान मे स्वतत्र सरकार की स्थापना करदी जायगी," विधान-निर्माण करनेवाली सभा (कान्स्टीटयुएण्ट असेम्बली) बुलाई जायगी, साम्प्रदायिक मतभेदो को स्वतत्र पच के सामने पेश किया जायगा, वगैरा। यह किताब १९४० के अत मे छपी है। अगर उनके इस हल को उसी वक्त अमल मे लाया जाता, तो मुमकिन है कि वह मौके की चीज साबित हुआ होता और अच्छा काम कर जाता। लेकिन इसके बाद जितने भी हल सुझाये गये है सो